इकाई 12 भूनिम्नीकरण

इकाई की रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
उद्देश्य
12.2 भूनिम्नीकरण
मृदा अपरदन
12.3 भूनिम्नीकरण का कारण
प्राकृतिक
मानव क्रियाएं
भूनिम्नीकरण की सीमा
12.4 भूनिम्नीकरण का प्रभाव
पृष्ठ कटाव तथा बाढ़
मरुस्थलीकरण
पोषकों का अभाव तथा भू-उत्पादकता
मृदा अपरदन की कीमत
12.5 प्रत्युपचार
12.6 सारांश
12.7 अन्त में कुछ प्रश्न
12.8 उत्तर

12.1 प्रस्तावना

इस खण्ड के पूर्व इकाइयों में आप वायु प्रदूषण तथा जल प्रदूषण के बारे में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में हम भूनिम्नीकरण के लिए जिम्मेदार कारकों का अध्ययन करेंगे।

मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण सामान्य रूप से संसार तथा विशेष रूप से भारत में विस्तृत पारिस्थितिक संकट उत्पन्न करते हैं। मानव सभ्यता के लम्बे 6000 पुराने इतिहास में ठीक रूप से ही प्रेक्षित किया गया है कि सम्पन्न सभ्यताओं के समाप्त होने के दो कारण थे गाद और नमक और ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि केवल प्राथमिक उत्पादन के लिए भूमि की आवश्यकता नहीं होती बल्कि वह प्रत्येक सामाजिक प्राथमिकता तथा आवश्यक एवं वांछनीय आर्थिक क्रियाओं को भी पूरा करती है।

इस इकाई में, हम भूनिम्नीकरण के प्राकृतिक तथा मानव क्रियाकलापों से उत्पन्न कारणों का वर्णन करेंगे। हम भूनिम्नीकरण के प्रभावों का वर्णन पृष्ठ कटाव तथा बाढ़ के पदों में करेंगे। अन्त में मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण से बचाव के कुछ उपाय सूझाए गए हैं।

उद्देश्य

इस भूनिम्नीकरण के पढ़ने के पश्चात, आप

- मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण को परिभाषित कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण के कारणों तथा विशिष्ट अध्ययन प्रदान करने वाले उसके सीमाओं के वर्णन कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण के प्रभावों के वर्णन कर सकेंगे,
- भूनिम्नीकरण को रोकने के उपायों की रूपरेखा दे सकेंगे।

12.2 भूनिम्नीकरण

मृदा एक जटिल वस्तु है तथा इसको भू-पृष्ठ एवं कार्यकारी मृदा परिच्छेदिका गहराई द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यह भौतिक, रसायनिक तथा जैविक रूप में कार्य करती है। इसलिए, इसके स्वास्थ्य तथा विभिन्न भू-प्रयोगों के लिए इसके उपयोगिता का जांच इन्हीं तीन दृष्टियों से किया जाता है। भारतीय भूमि की उपयोगिता अत्यधिक सीमित है ऐसा शताब्दियों से हो रहे उपयोग के फलस्वरूप इसकी आनुवांशिक उत्पादकता स्तर के कम होने के कारण है। कार्बनिक पूनर्चक्रण तथा पोषकों के निम्न परतों से उत्पादक उच्च परतों में परिवहन द्वारा भूमि उर्वरता का पुनरुद्भवन होता है। यह प्रक्रिया सहायक वनस्पति द्वारा समाप्त होती है। सहायक वनस्पति का नियत अभाव

भी भारतीय भूमि के कम उपजाऊ होने का कारण है। ईंधन तथा चारे के अभाव के कारण ऐसा होता है। यहाँ तक कि खेतिहर फसल के अवशेष भी भूमि में समावेशित नहीं हो पाते। गोबर का अधिकांशतः प्रयोग ईंधन के रूप में किया जाता है, साथ ही जंगली ह्यूमस भी उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि वनोन्मूलन लगातार बढ़ता जा रहा है। लम्बे शुष्क मौसम तथा सूखे के कारण पानी का अभाव होना दूसरा कारण है। यह इसलिए है कि जल की पूर्ति सीमित होती जा रही है जबकि पूरे वर्ष के दौरान विभिन्न उद्देश्यों के लिए जल की मांग बढ़ती जा रही है। यद्यपि भारत एक देश के रूप में औसत वार्षिक वर्षा की दृष्टि से खुशहाल है, फिर भी, इसके अधिक भाग में वर्षा बहुत ही कम होती है। वे स्थान जहां प्रचुर वर्षा होती है, वहाँ भी वर्षा का अधिकांश जल बह जाता है तथा दूसरे स्थानों पर बाढ़ की समस्या उत्पन्न करता है। अतः जल का उपयोग करने वाले मानव, तथा जन्तु और पौधे के लिए यह तभी उपलब्ध हो पाता है जब यह भू-पृष्ठ से होकर मृदा परिच्छेदिका में प्रवेश कर जाए। भू तथा जल चक्र के मध्य एक घनिष्ठ संबंध होता है। यह संबंध सभी तरह से और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि पृष्ठ कटाव तथा बाढ़, पोषकों का अवक्षय तथा उत्पादकता में अभाव के मुख्य कारण हैं। अब हम मृदा अपरदन के बारे में अध्ययन करेंगे जो भूनिम्नीकरण को जन्म देने वाली एक घटना है।

12.2.1 मृदा अपरदन

मृदा अपरदन उन सभी भौतिक प्रक्रियाओं को सम्बोधित करता है जो मृदा कणों को शिथिल करते हैं अथवा तोड़ देते हैं तथा जनक सतह से विलगित कणों को विस्थापित करते हैं। अपरदन अधिकतर गुरूत्व के फलस्वरूप भूखण्ड के अस्थायित्व के कारण होता है तथा पृथ्वी संहति (earth mass) में अत्यधिक नमी अथवा जल के कारण संतुलन खो जाता है। अक्सर इसको गुरूत्व अपरदन कहते हैं जैसे कि पतन, स्खलन, अथवा बहाव। भूस्खलन, वेग धारा अथवा नदी अपरदन से विखंडित चट्टान, दूसरे विलगित पदार्थ तथा टूटे हूए भूमि के संहति का बहाव होता है। इसलिए इसको संहति अपरदन (mass wasting) से जाना जाता है। इस प्रकार की प्रक्रियाएं भौतिक हैं तथा इनको भूमि प्रतिरोध के विश्लेषण से समझा जा सकता है। ऐसा प्रतिरोध वर्षा बूंद के प्रभाव तथा अपरदक के बहाव जैसे कार्यकारी बलों के विरुद्ध सँसजन तथा घर्षण के रूप में उत्पन्न होता है। देश के विभिन्न भागों में ऐसे समस्या क्षेत्र का वितरण चित्र 12.1 में दिखाया गया है।

मृदा अपरदन प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रिया कलापों द्वारा सम्पन्न होता है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं को

(i) भूवैज्ञानिक अपरदन (Geological erosion) तथा (ii) त्वरित अपरदन (accelerated erosion) में विभक्त किया जा सकता है।

1) भूवैज्ञानिक अपरदन

भूवैज्ञानिक मृदा अपरदन एक प्राकृतिक प्रक्रिया है जिसकी प्रवृत्ति पृथ्वी के तल को एक समान बनाना है। इस प्रक्रिया की प्रथम अवस्था अपक्षय (weathering) है जिसकी प्रकृति निश्चित रूप से भौतिक रासायनिक है। इससे पदार्थों का विघटन द्वारा, निम्नीकरण होता है। इस प्रक्रिया को उन निश्चित जैविक प्रभावों से सहायता मिलती है जो आगे और विघटन के लिए जिम्मेदार है। इस प्रक्रिया से जटिल भूमि पिंडों का विकास होता है जिनके भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण होते हैं। इसलिए, भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के रूप में, अपरदन, विभिन्न अपक्षय प्रक्रियाओं से होकर सम्पन्न होता है। आप भूवैज्ञानिक अपरदन का और अधिक अध्ययन खंड 12.3.1 में करेंगे।

2) त्वरित अपरदन

खेती के दौरान, भूमि पर बाहर से अत्यधिक दाब पड़ता है और इसके परिणामस्वरूप वनस्पति आवरण (vegetation cover) तथा जलवायु के मध्य संतुलन बिगड़ जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक साधनों से पृष्ठभूमि के कटाव की दर भूमि निर्माण की दर से अधिक होती है। इन दशाओं में होने वाले अपरदन को त्वरित अपरदन से सम्बोधित करते हैं। इसकी दर तथा परिमाण सामान्य भूवैज्ञानिक अपरदन से अधिक होता है।

अपरदन उत्पन्न करने वाले कारणों के आधार पर अपरदन निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जाता है :

जल अपरदन : जल एक महत्वपूर्ण बल है जिससे मृदा का परिवहन होता है। जल द्वारा अपरदन वर्षा की बूंदों, पानी की धाराओं तथा बर्फ के माध्यम से होता है। वर्षा के जल, जिसमें पिघली हुई बर्फ शामिल हैं, के द्वारा अपरदन को वर्षा बूंद अपरदन (rain drop) कहते हैं। भू-तल पर गिरने वाले वर्षा बूंदों से उन मृदा कणों का विलगन हो जाता है जो बाद में बहते जल के साथ दूर चले जाते हैं। मृदा की एक पतली परत विलगित हो जाती है तथा भू-पृष्ठ पर बहने वाले जल के साथ वह कुछ दूर चली जाती है। इस प्रकार के अपरदन को "धावन" अथवा "परत" अपरदन (sheet erosion) के नाम से जाना जाता है (चित्र 12.2 अ)। परती अपरदन बड़े रूप में भले ही न जाहिर हो परन्तु भूखण्ड का वह भाग जहाँ परती अपरदन होता हैं, प्रत्येक वर्ष उपजाऊ मिट्टी की एक परत खोता रहता है। परती अपरदन की दूसरी अवस्था जिसमें दृश्यभूमि पट अंगुली के समान रिल (rills) प्रगट होने लगते हैं, रिल अपरदन कहलाती है (चित्र 12.2 ब) ये रिल प्रत्येक वर्ष खेती की सामान्य प्रक्रियाओं द्वारा समतल होने लगते हैं। परन्तु प्रत्येक वर्ष रिलों की संख्या, आकृति तथा आकार धीरे-धीरे बढ़ने लगती है।

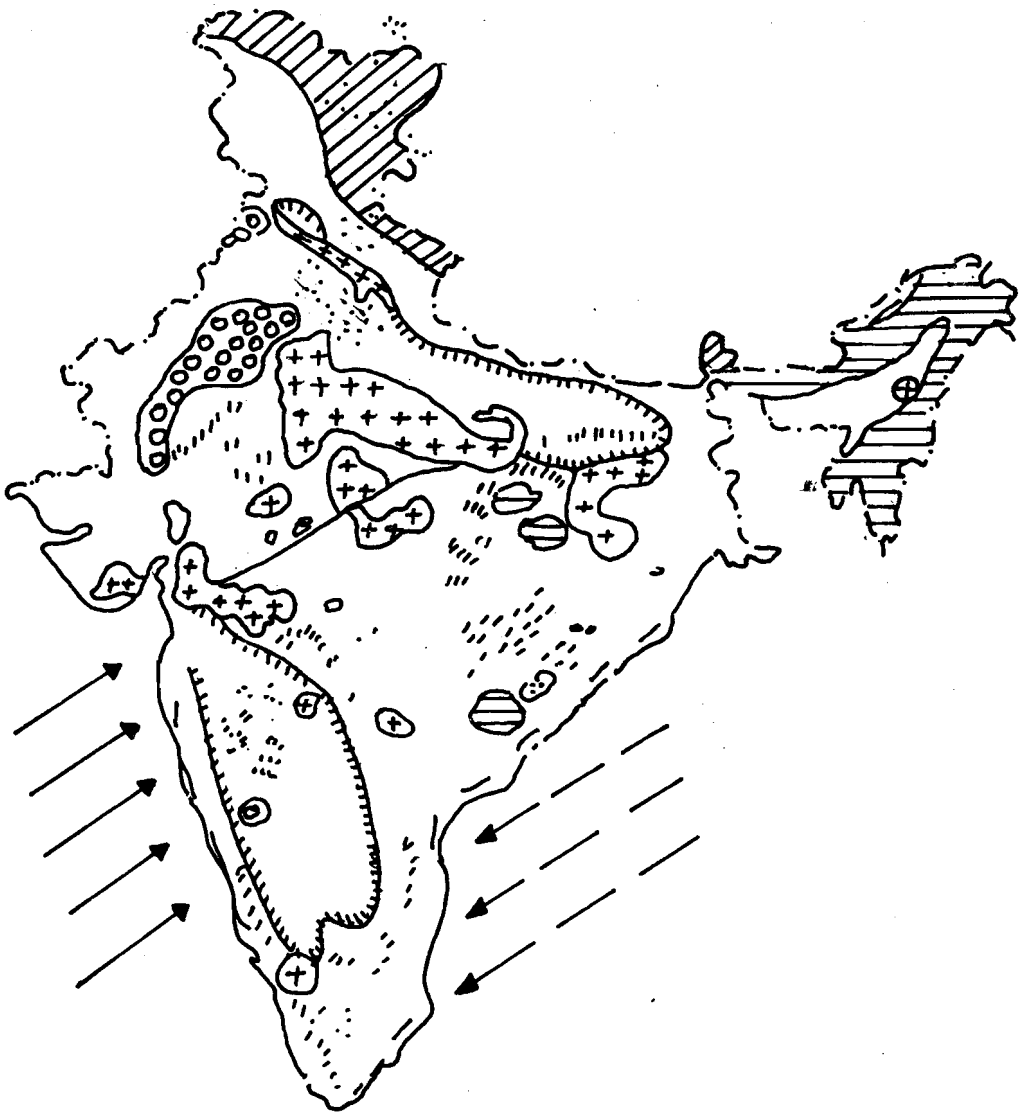

चित्र 12.1 : भारत में मृदा अपरदन (यह मानचित्र राजनैतिक सरहदें नहीं प्रदर्शित करता है)

अवनालिका अपरदन (gully erosion) रिल अपरदन की बढ़ी हुई अवस्था है (चित्र 12.2 स) । नगण्य रिल (छुद्र सरिता) आकार में बढ़ने लगते हैं तथा अवनालिका रूप धारण कर लेते हैं। अवनालिकाएं खेतिहर भूमि के एक बिन्दु पर पृष्ठकटाव से उत्पन्न द्रव्यमान के सांद्रण से भी बनती है। यदि अवनालिकाओं पर नियंत्रण न किया जाए तो वर्षों तक ये फैलते जाते हैं। खड्ड अवनालिकाओं के ही एक रूप हैं। बहते हुए जल के द्वारा सरिता तीर के कटाव को सरिता तीर अपरदन कहते हैं। कुछ निश्चित क्षेत्र का अपरदन जहाँ नदियां तथा नाले अपनी धारा को परिवर्तित करते रहते हैं, अत्यधिक त्वरित गति से होता है। सरिता तीर अपरदन खेतिहर भूमि, सड़क मार्ग, रेलमार्ग तथा पुलों को क्षतिग्रस्त करते हैं।

खड्डे पूरे देश में वर्ष भर में 3000 हैक्टेयर भूमि नष्ट करते हैं जहां खड्ड कटाव क्षेत्रफल का लगभग 0.5% अपरदित हो जाता है। खड्ड अधिकांशतः युमना, चम्बल, साबरमती, माही, गोमती जैसे नदियों के किनारे पाए जाते हैं।

तटीय अपरदन : समुद्री किनारों पर तरंग क्रिया तथा कुछ स्थानों पर समुद्र के बढ़ने के कारण होता है। तटीय अपरदन पर नियंत्रण पाना जल अपरदन के दूसरे प्रकारों की अपेक्षा अधिक कठिन है।

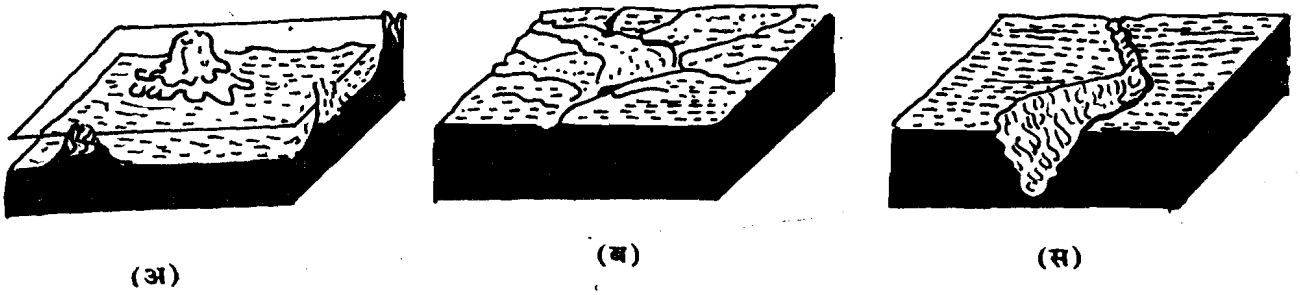

(अ) (ब) (स)

चित्र 12.2 मृदा अपरदन के प्रकार (अ) परत अपरदन (ब) रिल अपरदन (स) अवनालिका अपरदन

वायु अपरदन : वायु द्वारा मृदा अपरदन उन क्षेत्रों में बहुत सामान्य है जहाँ वनस्पति भूमि को ढकने तथा उसको सुरक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। ऐसी दशाएं शुष्क भूमि में तथा समुद्र, झील तथा नदियों के रेतीले किनारों पर होती हैं। बारीक हल्के मिट्टी के कण भूमिसतह से उड़ा लिए जाते हैं तथा वायु द्वारा दूर ले जाये जाते हैं। कई छोटे-छोटे उच्छलनों (short bounces) द्वारा परिवहित मृदा गादन (siltation) कहलाती हैं। छोटे-छोटे मिट्टी के कण निलम्बन के रूप में लम्बी दूरी तक ले जाए जाते हैं। मृदा की ऐसी गति को निलम्बन गति (suspension movement) कहते हैं। वायु के उच्च वेग के परिणामस्वरूप भारी मृदा कण पृथ्वी के सतह पर से ले जाए जाते हैं, इसको पृष्ठ सपर्ण (surface creep) से परिभाषित करते हैं।

रेत वायु के द्वारा लगातार एक स्थान से दूसरे स्थान तक उड़ती जाती है। और यह रेत खेतिहर भूमि, फलोद्यान, इत्यादि जो भी रास्ते में पड़ते हैं, को ढक लेती है तथा समय के साथ धीरे-धीरे अनुत्पादी हो जाते हैं। इस प्रकार पौधे रेत में धंस जाते हैं तथा हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। जैसे-जैसे रेत आगे बढ़ती है, रेगिस्तान आकार में बड़े होते जाते हैं।

बोध प्रश्न 1

उपरोक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए खाली स्थानों की पूर्ति कीजिए।

अ) इन भौतिक प्रक्रियाओं ..... से संबोधित करते हैं जो विलगित कणों को मूल स्थान से विस्थापित करते हैं।

ब) वर्षा के जल द्वारा मृदा अपरदन की तीन अवस्थाएँ हैं (i) ..... अपरदन, (ii) ..... अपरदन तथा (iii) ..... अपरदन।

स) समुद्री किनारे पर तटीय अपरदन का कारण ..... क्रिया तथा समुद्र का बढ़ना है।

द) गादन, निलंबन गति तथा पृष्ठीय सपर्ण ..... अपरदन की घटनाएं हैं।

12.3 भूनिम्नीकरण के कारण

भूमि का विखंडन प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रियाकलापों द्वारा होता है। आइए हम इन दोनों का संक्षिप्त अध्ययन करें।

12.3.1 प्राकृतिक

मृदा एक जटिल पिंड है। इससे पृथ्वी के पतले बाह्य परत का निर्माण होता है। यह प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से चट्टानों के खनिज रचकों से विकसित होती है। इस प्रक्रिया की प्रथम अवस्था अपक्षय है जिसकी प्रकृति निश्चित रूप से भौतिक-रासायनिक है। अपक्षय से जटिल पदार्थों का सरलीकरण होता है। जिससे विखंडन द्वारा चट्टान बनते हैं। दूसरी अवस्था में संपिडन की प्रक्रिया द्वारा मृदा का निर्माण होता है। इसकी प्रकृति जैव-भू रासायनिक है। यह प्रक्रिया कुछ निश्चित जैविक प्रभावों द्वारा सम्पन्न होती है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न पदार्थों का संश्लेषण होता है तथा अन्त में भौतिक, रासायनिक तथा जैविक गुण धर्मों वाले जटिल मृदा पिण्डों का निर्माण होता है। अपक्षय की यह प्राकृतिक प्रक्रिया धीमे-धीमे सम्पन्न होती है तथा यह विकास चक्र का एक भाग है।

इस प्राकृतिक अपरदन प्रक्रिया की तीव्रता को अनाच्छादन (denudation) की दर अथवा भू-पृष्ठ के नीचे आने की दर से जाना जा सकता है। अनाच्छादन दर भारत में विशेषकर हिमालय की तराई से अधिक प्रायः तक परिवर्तित

होती है। सतलज तट के लिए इसका मान प्रतिवर्ष 21 मिलीमीटर होता है जबकि दार्जलिंग में यह 20 mm प्रतिवर्ष है। परन्तु सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए इसका सामान्य आकलन प्रतिवर्ष 0.1 से 1 मिलीमीटर के मध्य होता है। अधिकांश प्राकृतिक अपरदन भू-पृष्ठ के उत्थान अथवा ऊपर उठने से उदासीन हो जाता है। आकलित परास 1 मिलीमीटर से 9 मिलीमीटर प्रतिवर्ष है। फिर भी, मृदा क्षति के बारे में उपलब्ध जानकारी, अवसादन दर तथा भारत से प्राप्त दूसरे आंकड़ों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आकलित उत्थान दर 5 मिलीमीटर प्रति वर्ष से कम है।

वर्तमान समय में आकलित भूवैज्ञानिक अपरदन दर का मान 10 सेंटीमीटर प्रति 1000 वर्ष पाया गया है जो बीते हुए चालीस मिलियन वर्ष के दर से पांच गुना ज्यादा है। हाल के बीते समय के दौरान किसी प्रकार के अप्रायोगिक भू-वैज्ञानिक प्रोत्थान का किसी विस्तृत क्षेत्र में कोई प्रमाण नहीं है जबकि अन्तिम दो या तीन शताब्दियों में जनसंख्या तथा सम्बंधित क्रियाकलापों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है जो भू-विखंडन में मानव के मध्यवर्ती भूमिका को बताता है।

12.3.2 मानव की क्रियाएं

सभी प्रकार के जीवों में जो इस पृथ्वी पर रह चुके हैं तथा रह रहे हैं, मानव जाति ने अपने विभिन्न प्रकार के सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक रूपान्तरण किया है। ये हस्तक्षेप करने वाली भूमिकायें बहुमुखी हैं। प्रायः इनका उद्देश्य मातृभूमि से अधिक से अधिक संसाधनों को प्राप्त करना है तथा इस प्रक्रिया में जैव भू-भौतिक तन्त्र को अस्तव्यस्त कर देता है। पृथ्वी द्वारा हानिकारक प्रभावों के सहन करने की क्षमता को कम किया है तथा समुप्रयोजन के कारण हुए अभावों को खत्म करने की पुनर्दभावित योग्यता भी कम हो जाती है। दूसरी तरफ पृथ्वी पर कई विनाशकारी घटनाएं भी हुई जैसे विश्व-युद्ध के दौरान की वे घटनाएं जो इस ग्रह के प्राकृतिक रक्षात्मक व्यवस्थाओं पर गंभीर असर डालती है।

कुछ महत्वपूर्ण प्रभाव निम्न प्रकार है :

अ) वनोन्मूलन
ब) खेती
स) आर्थिक क्रियाएं, खनन, इत्यादि
द) विकास क्रियाएं, बन्दोबस्त, परिवहन तथा संचार

हम भूमि की गुणता पर उनके प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

अ) वनोन्मूलन

वनोन्मूलन की प्रक्रिया में भौतिक रूप से बार-बार लकड़ी का काटना, गिराना, वन ऋण संस्तर को हटाना, पशुओं द्वारा चारण तथा ट्रैम्प, आग लगाना इत्यादि शामिल हैं। 1976 से 1985 के मध्य वनोन्मूलन की जांच से पता चलता है कि भारत में 0.174 मेगाहैक्टेयर जंगल प्रतिवर्ष उन्मूलित किए गए हैं। जैसा कि आप खण्ड 8.31 से जानते हैं कि 1951 से 1972 तक 4 मेगाहैक्टेयर वन विभिन्न उद्देश्यों के लिये नष्ट किए गए हैं।

भारत और नेपाल में विभिन्न प्रकार के अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि भोजन, पशुधन तथा आग जलाने के लिए लकड़ी की बढ़ती हुई मांग ही वनोन्मूलन के प्रत्यक्ष कारण है। इस प्रकार के खाद्य पदार्थों के उत्पादन वृद्धि के प्रयास प्रायः असफल हैं तथा प्रायोगिक रूप से वायुमंडलीय वनाश को जन्म दिया है। मृदा अपरदन, भूविखंडन, पोषक तत्वों के अभाव तथा भूमि, पौधे एवं वायुमंडल के मध्य के नाजुक साम्य को सर भूमि तथा अनुपजाऊ भूमि के लम्बे क्षेत्र के रूप में देखा जा सकता है जहाँ कभी हरे पौधे थे।

वन रूपान्तरण (forest conversion) का दूसरा महत्वपूर्ण कारण ईंधन के लिए लकड़ी की मांग है। उष्णकटिबंध के क्षेत्र वाले गाँव की आबादी, पूर्णरूपेण ईंधन लकड़ी पर निर्भर है और यह उनकी ऊर्जा का एक मुख्य साधन है। ऐसा आकलित किया गया है कि गाँवों में आवश्यक ऊर्जा की प्रतिशत मात्रा केनिया में 90%, जाम्बिया में 88% तथा नेपाल, श्रीलंका एवं थाईलैंड में 95% जो ईंधन के रूप में लकड़ी से मिलती है। ईंधन लकड़ी के खपत का आकलित मान औसत खपत 1.5 मीटर^3/कैपिटल/वर्ष के साथ 0.8 से 2.0 मीटर^3/कैपिटल/वर्ष तक परिवर्तित होता है। वनोन्मूलन तब तक जारी रहेगा जब तक कि गाँव वाली आबादी को एक विश्वसनीय तथा सस्ता ईंधन का कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं कराया जाता।

आप इकाई 8 में पढ़ चुके हैं कि भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलूर, नार्थ ईस्ट हिल यूनिवर्सिटी, शिलांग, पर्यावरण अध्ययन केन्द्र, नई दिल्ली तथा दूसरी संस्थाओं द्वारा किए गए हाल के अध्ययन से यह पता चलता है कि वनोन्मूलन की बढ़ती हुई दर के लिये जंगलों में तथा इसके इर्द-गिर्द रहने वाले समुदाय तथा उन व्यक्तिओं को जो महत्वपूर्ण रूप से अपने निर्वाह के लिए वन उत्पादों पर निर्भर हैं, दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। वास्तव में, वन उत्पाद के पारम्परिक प्रवाह का विश्लेषण यह इंगित करता है कि ये लोग जंगल उत्पाद का प्रयोग वन कवच को बिना नुकसान पहुँचाए करते हैं। दूसरी तरफ वन, संसाधन के केन्द्रीकृत व्यवस्था के बावजूद आबादी वाले वनों का अधिकांश भाग समुदाय द्वारा नष्ट कर दिया गया तथा उसे (समुदाय को) अन्य विकल्पों की जरुरत है। इससे

कुछ सीमित क्षेत्र के समुदाय द्वारा त्वरित समुप्रयोजन हो सकता है। वास्तव में, बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन जब भी जारी है। ऐसा संसाधनों को प्राप्त करने अथवा स्थानीय समुदाय द्वारा अपने निर्वाह के लिए आवश्यकताओं की मांग को पूरा करने के लिए हो रहा है। वनों और समुदाय के मध्य पारम्परिक सम्बन्ध के स्थान पर बढ़ती हुई असंबद्धता और उदासीनता और व्यापक होती जा रही है। बड़े पैमाने पर वनोन्मूलन के सम्भव पारिस्थितिक प्रभाव अब आर्द्र तथा अर्द्ध आर्द्र कटिबंधीय (subhumid tropics) स्थानों पर पड़ रहे हैं, जिससे संसार के वैज्ञानिकों, वायुमंडल शास्त्रियों तथा योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित हुआ है।

जलवायु पर स्थानीय तथा ग्लोबीय पर्यावरण परिवर्तनों, तथा भंगुर मृदा संसाधनों के विखंडन का अनुमान लगाने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि भली-भांति सुनियोजित तथा उपयुक्त लम्बे समय के उन अध्ययनों से ठोस आंकड़े एकत्रित किए गए जो वनोन्मूलन के प्रभावों का मात्रात्मक रूप देते हैं। वन रूपान्तरण के कुछ प्रभावों का वर्णन सारणी 12.1 में किया गया है।

सारणी 12.1

वनोन्मूलन तथा उष्ण कटीबंधीय भूमि में गहन कृषि से भूमि एवं सूक्ष्म जलवायु में परिवर्तन

जल विज्ञान चक्र (Hydrologic cycle)
वनस्पति द्वारा अवरोधन में कमी
जल प्रेषण तथा भूमि के धारण लक्षण में कमी
50 सेंटीमीटर गहराई के नीचे की उपभूमि द्वारा जल ग्रहण करने में कमी
वाष्पीकरण में वृद्धि
पृष्ठकटाव में बढ़ोत्तरी
अन्तरप्रवाह घटकों में बढ़ोत्तरी

सूक्ष्म जलवायु (Microclimate)
ताप आयाम में बढ़ोत्तरी
औसत आपेक्षिक आर्द्रता में घटोत्तरी
मृदा पृष्ठ पर पहुँचने वाले विकिरण में बढ़ोत्तरी

ऊर्जा संतुलन (Energy balance)
मृदा ताप के उच्चावचन (fluctuation) में बढ़ोत्तरी
भूमि की उष्मा धारिता में परिवर्तन
प्रावस्था कोण, आवर्तिता तथा अवमदन गहराई में परिवर्तन

मृदा जन्तु एवं पौधे (Soil Flora and Fauna)
वृहद् तथा सूक्ष्म जीवधारियों, विशेषकर केंचुआ के जैविक क्रियाओं में घटोत्तरी
वनस्पति के प्रकार में परिवर्तन
चौड़ी पत्ती वाले पौधों से घास तक तथा बहुवर्षीय से एकवर्षीय तक
जलवायु की चरम अवस्था में परिवर्तन

ब) खेती

मृदा अपरदन तथा जैव विभिन्नता का एक बड़ा कारण बहुउद्देशीय कृषि था जिसके द्वारा मानव का हस्तक्षेप होता रहा। यह उन प्राकृतिक साधनों के साथ हस्तक्षेप करती है जिनसे भू उत्पादकता पुनरुद्भावित होती है तथा उपलब्ध नमी भंडार की पुनः आपूर्ति की जाती है। इस प्रकार की खेती ने मृदा की उत्पादकता का स्वाभाविक रूप से पुनरुत्पादन बढ़ाने और नमी स्रोतों के आपूरण में बाधा पहुँचाई है। जैव रसायनों तथा सिंचाई से मृदा तथा नमी स्रोत दोनों ही दूषित होते हैं। खेतिहर भूमि में होने वाले अपरदनों में सबसे हानिकारक धावन अथवा परती अपरदन हैं। यह धीमे-धीमे सम्पन्न होता है तथा उतना कौतुक्तपूर्ण नहीं होता है। जैसा कि पहले बताया गया है कि ऊपरी अपरदित भूमि के बहाव के कारण रिक्त बनते हैं तथा इसके तुरन्त बाद अवनालिकाएं तथा खड्ड बनते हैं। शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में, रेत के झोंके तथा रेत का स्थानांतरण ठीक उसी प्रकार होता है जिस प्रकार परती अपरदन होता है यही जल मुख्य कर्मक है। परिणामस्वरूप, मरुस्थलीकरण विसर्पी प्रभाव स्थापित हो जाता है तथा लगातार भू उत्पादकता तथा इसके सहायक क्षमता को नष्ट करता है।

पर्वती वक्र भूमि पर अनियंत्रित कृषि जिसमें किसी प्रकार का भू उपचार जैसे बंध बनाना, वेदना, खाई खोदना जैकेट बनाना, रिवेट लगाना इत्यादि नहीं किये जाते हैं तो उस भूमि में पोषकों की कमी हो जाती है। इसी प्रकार आबादी बढ़ने के कारण एक ही भूमि पर बार-बार फसल उगाने से अथवा सीमान्तीय तथा उपसीमान्तीय भूमि पर अत्यधिक कृषि के कारण प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की पूर्व रूप में लाने तथा अपरदन से भूमि को बचाने के लिए बहुत कम समय मिलता है। स्थानांतरित कृषि (shift cultivation) वाले क्षेत्रों में आबादी का दबाव खाली चक्र को बहुत कम करता है तथा इस प्रकार यह पौधों की अनेक जाति जो बहुपक्षीय जंगल में होती हैं, के प्राकृतिक पूनरुद्भाव को रोकता है। दूसरी तरफ पशुओं की बढ़ती हुई संख्या जिसमें भटकने वाले जानवरों के अतिरिक्त बकरी तथा भेड़ विशेष रूप से शामिल हैं। घटती हुई सामुदायिक भूमि तथा अन्य चरागाहों की भूमि को अधिकाधिक चरते जा रहे हैं। इसका सबसे बड़ा परिणाम अपरदन में बढ़ोत्तरी तथा पौधों की वृद्धि में घटोत्तरी है।

स) आर्थिक क्रियाएं

समुदाय भूमि के अतिरिक्त, खनिज, धातु तथा जीवाश्म ईंधन दूसरे प्रकार के प्राकृतिक संसाधन हैं जिनपर समाज अपने ऊर्जा की आवश्यकता तथा दूसरे प्रकार की क्रियाओं के लिए आश्रित है। ऐसे प्राकृतिक संसाधनों के निष्कर्षण के लिए वनोन्मूलन तथा दृश्यभूमि में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है, जिनसे प्राकृतिक भूमि संसाधन आधार में अनुत्क्रमणीय परिवर्तन होता है। खान वाले क्षेत्र तथा खानं अपाशिष्ट, अपरदन तथा भूविखंडन के बड़े स्रोत हैं, जिनके साथ-साथ जल संसाधन तथा भू उत्पादकता में अत्यधिक कमी होती है। अधिक गहराई से खनन जैसे तेल, गैस इत्यादि के कारण अवतलन तथा इससे संबंधित अपरदन होता है। इकाई 7 में आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं कि अत्याधिक खनन के कारण भू-गुणता घट जाती है।

द) विकास कार्य

मानव समाज के लिए अनेक सामाजिक प्राथमिकताए हैं जैसे रहने का आवास, परिवहन, संचार, मनोरंजन इत्यादि। इन सभी कार्यों के लिए, भूमि तथा भूमि पर आधारित सामग्री आवश्यक हैं। मानव बस्ती मृदा तथा भूखण्ड के लिए एक बड़ी विभीषिका है क्योंकि किसी भी विकास में निर्माण के दौरान त्वरित अपरदन होता है। परिणामस्वरूप बस्तियों के कारण भूखण्ड सिर्फ अनुत्क्रमणीय अनुपजाऊ प्रयोग के लिए ही रह जाता है। सड़क, रेल, इत्यादि को सीध में लाना होता है जिसमें उनको प्रकृति में उपस्थित पर्वत श्रेणी, घाटी, झरना तथा नदियों को काटते हुए पार करना पड़ता है।

ऐसी सुविधाओं के निर्माण के लिए बड़ी चट्टानों तथा बड़े क्षेत्रों में मृदा को हटाना पड़ता है जिससे बहुत ज्यादा अपरदन होता है और प्राकृतिक अपवाह तंत्र नष्ट हो जाता है। इस कारण जगह-जगह पानी इकट्ठा हो जाता है जिससे भूस्खलन तथा फिस्लन हो जाती है।

12.3.3 मृदा अपरदन की सीमा

मृदा अपरदन की सीमा के लिए पूरे देश का न तो कोई विस्तृत सर्वेक्षण ही किया गया और ना ही कोई ऐसा तेज सर्वेक्षण किया गया जो देश के किसी यथार्थ सीमा तक अपरदन को बता सके। 15 वर्ष पहले तक विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं को एकत्रित करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था तथा इसको दूसरे सांख्यिकी से सहसम्बंधित करने का भी प्रयास नहीं किया गया जिससे देशभर में भूमि से संबंधित विभिन्न समस्याओं के विस्तार का परीक्षण निर्धारित होता हो। 1970 के प्रारम्भ में, राष्ट्रीय कृषि आयोग (National Commission on Agriculture) ने देश भर में एक अभ्यास किया जिससे यह इंगित होता है कि लगभग 175 मेगाहैक्टेअर अथवा देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का 53% भाग विभिन्न प्रकार के मृदा अपरदन तथा भूनिम्नीकरण की समस्या से ग्रसित है। देश के विभिन्न भागों में फैले अपरदन समस्या को चित्र 12.1 में प्रदर्शित किया गया है।

आइए हम दो उदाहरणों (case study) का अध्ययन करें। एक उदाहरण भारत का है तथा दूसरा अमेरिका का। दून घाटी एक सुन्दर स्थान है जहाँ विभिन्न प्रकार के पौधे तथा जीव-जन्तु पाये जाते हैं। यह एक तरफ से शिवालिक तथा हिमालय से घिरा है और दूसरी तरफ गंगा तथा यमुना से घिरा है। परन्तु आजकल यह सुन्दर घाटी में खतरा है कि यह बर्बाद हो रही है क्योंकि वहाँ से चूने के पत्थर अनियंत्रित ढंग से निकाले जाते हैं तथा वहाँ वनोन्मूलन भी जारी है। घाटी में पेड़ आवरण केवल 12% है जबकि सरकारी तौर पर 60% की संस्तुति है। दून घाटी मानव क्रियाओं जैसे खान खोदने तथा वनोन्मूलन के कारण होने वाले अपरदन का एक अच्छा उदाहरण है। पर्यावरण विभाग की रिपोर्ट के अनुसार खान के मलवे को नदी तथा नालों में गिरा दिया जाता है जिससे पानी के बहाव में बाधा उत्पन्न होती है तथा सिंचाई की आपूर्ति प्रभावित होती है।

पुनश्च, चूने के पत्थर वाले क्षेत्र कई वर्षों तक जल को इकट्ठा करने रोकने तथा छोड़ने के साधन के रूप में कार्य करते रहे। सभी महत्वपूर्ण नदियां तथा झरने जैसे यमुना, बिन्दल, सोंग, सुसवा तथा सहस्त्रधारा इत्यादि इसी क्षेत्र से प्रारम्भ होती है जहां चूने के पत्थर के निक्षेप उपस्थित हैं। चूने के पत्थर की खुली खान वनोन्मूलन में सहायक हुई है तथा चरागाह में कमी हुई है। चूना निकालने की प्रक्रिया से वन तथा प्राकृतिक झरने नष्ट हुए हैं तथा उस क्षेत्र में अत्यन्त हानिकारक पारिस्थितिक उत्पन्न हुई है। खनन प्रक्रियाएं पहाड़ियों को कमजोर करती हैं जिससे भूस्खलन होता है तथा नदियों में गाद की समस्या बढ़ती जाती है।

सरकार द्वारा किये गये कई लागत-लाभ विश्लेषण यह बताते हैं कि यदि उस क्षेत्र में सभी प्रक्रियाएं बन्द कर दी जाती तब भी चूने पत्थर उद्योग को नुकसान नहीं होगा। इसीलिए सरकार को एक कानून बनाकर घाटी को पारिस्थितिक भंगुर क्षेत्र (Ecologically Fragile Zone) घोषित कर सकती है। उपरोक्त केस स्टडी में आप समझ चुके हैं कि खनन कैसे अपरदन को बढ़ाते हैं तथा भू-उत्पादकता को नष्ट करते हैं।

अब हम यह अध्ययन कर सकते हैं कि कृषि कार्य कैसे भूमि, किसान तथा उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। हालाँकि इसी से संबंधित मुद्दा यह है कि कृषि प्रदूषण कैसे अकृषीय पारिस्थितिक तंत्र को प्रभावित करते हैं। जब खेतों से मृदा का अपरदन होता है तो केवल खेत ही नहीं बल्कि वायु भी धूल से भर जाती है तथा गाद झरनों

में एकत्रित हो जाता है। विभिन्न पोषक तत्वों के अतिरिक्त कीटनाशक पदार्थ भी झरनों में गिरते रहते हैं तथा सप्लाई किये गये भौम जल में निक्षालित हो जाते हैं। कुछ कृषीय क्षेत्रों में कुएं के जल में नाइट्रेट की इतनी अधिक सांद्रता होती है कि वह पीने के अयोग्य होता है। इसलिए अच्छी तरह समझने के लिए, हम संयुक्त राज्य अमेरिका में की गई केस स्टडी नीचे प्रस्तुत करते हैं।

प्रारम्भिक यूरोपी निवासियों को अमेरिका में कई मिलियन हैक्टेयर ऐसी भूमि मिली जहाँ पहले कभी खेती नहीं हुई थी। पूर्वी तट में सघन जंगल लगे थे तथा इस प्रकार यह स्वाभाविक ही था कि उन्होंने पश्चिम में खेती करने का निश्चय किया। यहां की मिट्टी चट्टानरहित, पेड़रहित, चौड़ी, आसानी से जुताई करने, बोने तथा फसल काटने योग्य थी जो उनको आकर्षित कर गई। 1889 में, ओकलामा प्रदेश घर बनाने के लिए खुला। उसके थोड़े ही हफ्ते बाद, गैर-भारतीय आबादी लगभग शून्य से 60,000 तक हो गई। 1900 तक आबादी 390,000 हो गई। फिर भी 20 से 35 वर्ष पश्चात्, अनुचित ढंग से खेती करने की क्रिया से मृदा की उत्पादकता घटने लगी। उर्वरकों का कम प्रयोग — मृदा का वायु तथा जल अपरदन द्वारा अपना प्रभाव दिखाने लगे। अन्त में जब सूखा पड़ा तो बीज अंकुरित नहीं हो सके और बर्बाद हो गए। 1934 में, गर्म हवा पूरे देश में चली तथा ऊपरी मृदा को उड़ा ले गई। यहाँ तक की उसका कुछ भाग धूल के रूप में 1300 कि.मी. पूर्व दूर अटलांटिक महासागर में उड़कर जा पड़ा। सब मिलाकर 3.5 मेगाहैक्टेअर भूमि नष्ट हो गई तथा इसके अतिरिक्त 30 मेगाहैक्टेअर भूमि की उत्पादकता बहुत अधिक से कम हो गई। आज भी खतरनाक वायु अपरदन जारी है तथा कुछ कृषि शास्त्रीयों को यह भय है कि दूसरा बड़ा धूल से भरा अनउपजाऊ क्षेत्र बन रहा है।

बोध प्रश्न 2

यह बतायें कि निम्न कथन गलत हैं अथवा सही :

अ) प्राकृतिक साधनों की तुलना में मानव के हस्तक्षेप से मृदा को बहुत अधिक नुकसान पहुँचा है। यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि अप्रयोगिक भूवैज्ञानिक प्रोत्थान का बीते हुए समय में विस्तृत क्षेत्र में अभाव रहा है जबकि मानव क्रियाएं इस काल में असंमुखी अनुपात में मानी गई है।

ब) वनोन्मूलन के बढ़ते हुए दर के लिए जंगल में रहने वाले उस समुदाय को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है जो अपने निर्वाह के लिए इस पर निर्भर हैं बल्कि इसके वे दोषी हैं जो जंगलों को बाहर की आपूर्ति के लिए इसको काटते हैं और अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं जैसे ठेकेदार।

स) रेतीले जमीन पर सतत खेती करने तथा सीमांत भूमि पर जुताई बुआई से इतना बीच का अवकाश नहीं पड़ता कि पारिस्थितिक तंत्र भूमि की उत्पादकता को पुनः पूर्व रूप में ला सके।

द) मकान, सड़क, रेल, पुल, बांध इत्यादि के निर्माण से पृथ्वी पर भार का स्थानांतरण हो जाता है। इससे बड़े क्षेत्र में भूस्खलन तथा भूसर्पण होता है।

12.4 भूनिम्नीकरण का प्रभाव

मृदा अपरदन भूनिम्नीकरण की एक सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। इससे न केवल जल तथा पादप पोषकों की ही बरबादी होती बल्कि अन्त में स्वयं मृदा ही समाप्त हो जाती है, जो बदले में फसल की उपज को प्रभावित करती है। झरनों तथा नदियों के पेंदों में मृदा जाकर जम जाती है जिससे उसकी जल को ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है जो बाढ़ को जन्म देती है। हम भूनिम्नीकरण के प्रभावों पर एक-एक करके विचार करेंगे।

12.4.1 पृष्ठ कटाव तथा बाढ़

पृष्ठ कटाव के कारण अधिकांश मृदा नष्ट हो जाती है। आइए हम यह समझें कि पृष्ठ कटाव का अर्थ क्या है। किसी क्षेत्र का वर्षण या वर्षा जो क्षेत्र से धारा जलमार्ग द्वारा विसर्जित होती है, बिना मिट्टी में प्रवेश किये नष्ट हो जाती है इसको पृष्ठ कटाव कहते हैं। पृष्ठ कटाव भूमि में जल का अन्तःस्रवण कम करता है या बिल्कुल रोक देता है। कटाव का स्तर क्षेत्रों से क्षेत्रों तक तथा भूमि से भूमि तक परिवर्तित होता है। कुछ अपद्र प्रभागों में, ऐसा नुकसान इतना अधिक होता है कि यह वार्षिक वर्षा का 50-60% तक हो जाता है। जबकि वार्षिक कटाव से नुकसान अर्द्ध शुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों में बहुत कम होता है, उच्च दर की क्षति उन क्षेत्रों में आने वाली बृहद् आंधियों के दौरान असामान्य नहीं है। कटाव से अवसादन (sedimentation) तथा बाढ़ में भी बढ़ोत्तरी होती है।

भारत में बाढ़ की समस्या का क्रोड सिन्धु-गंगा के बेसिन में है जहाँ 60 मेगाहैक्टेअर उपजाऊ भूमि प्रभावित होती है तथा पूरे देश में बाढ़ से प्रभावित होने वाले कुछ क्षेत्र का 60% भाग इसी प्रकार बनता है। यह बेसिन भारत के 40% आबादी तथा सक्रिय उद्योगों की सहायता करती है तथा ये देश के खनिज संसाधनों को प्रदान करती हैं। दूसरी तरफ, ब्रह्मपुत्र बेसिन इस तथ्य के कारण महत्वपूर्ण है कि वहां बार-बार बाढ़ आती है जिससे कि विकास

के कार्यों को गंभीर रूप से प्रभावित होना पड़ता है। यह जानना रोचक होगा कि सिंधु गंगा के बेसिन में बाढ़ आने के कारण केवल अत्यधिक वर्षा का होना तथा पहाड़ी पर बर्फ का पिघलना ही नहीं है बल्कि इसका कारण गंगा के दाहिने किनारे की सहायक भूमि द्वारा उपयुक्त समय में पानी के निकास की अयोग्यता तथा बृहद् क्षारीय क्षेत्र द्वारा वर्षा के जल को अवशोषित तथा प्रयोग करने की अयोग्यता भी हैं।

कम समय में ही यदि असामान्य भारी वर्षा हो तो उसके कारण बाढ़ आ जाती है। फिर भी, मानव के विभिन्न हस्तक्षेप करने वाले क्रियाकलापों के कारण भू-पृष्ठ तथा मृदा परिच्छेद द्वारा वर्षा के जल का अवशोषण, अवरुद्ध तथा उपभोग करने की क्षमता बुरी तरह प्रभावित होना है तथा अन्तराप्रवाह हो जाना भी मुख्य सहयोगी कारक हैं।

12.4.2 मरुस्थलीकरण

मरुस्थलीकरण सामान्यतया देश के शुष्क भूखण्ड से सम्बंधित एक समस्या है। जबकि जल प्रतिबल तथा सूखे का प्रभाव शुष्क रेगिस्तान, अर्द्धशुष्क तथा कम वार्षिक वर्षा वाले बड़े क्षेत्र में पड़ता है, उत्पादकता के अतिरिक्त अच्छे स्वच्छ वातावरण की समस्या के विवेचनात्मक रूप को देखना होगा। मरुस्थलीकरण की सबसे बड़ी समस्या है। भूमि की जैविक उत्पादकता का निम्नीकरण जिससे अन्ततः मरुस्थल का निर्माण होता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पूरे पारिस्थितिक तंत्र का ह्रास होता है जिससे पादप और जन्तुओं की हानि होती है।

वायु अपरदन तथा शुष्क परिस्थितियों के क्षेत्र अनुमानतः 38.73 मेगा हैक्टेयर है जिसमें 7.03 मेगा हैक्टेयर ठंडा मरुस्थल शामिल है। गर्म मरुस्थली और शुष्क क्षेत्र भारत में सात प्रदेशों में बिखरे हुए हैं जो निम्न प्रकार से हैं : राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, आंध्र प्रदेश, कर्नाटका और महाराष्ट्र। मृदा की अपरदन क्षमता जब तेज हवाओं और कम हुई वनस्पति आवरण के साथ मिल जाती है तो उस क्षेत्र में जहाँ मरुस्थलीकरण प्रारंभ हो चुका है वहां ज्यादा निम्नीकरण होने लगता है। फिर भी मरुस्थलीकरण के फैलने का ज्यादा खतरा वहां नहीं रहता।

आपने इकाई 7 में मरुस्थलीकरण के कारणों और प्रभावों के बारे में पहले ही विस्तार से पढ़ा है। अब हम उत्पादकता पर भूमि के निम्नीकरण के प्रभावों के विषय में विचार करेंगे।

12.4.3 पोषकों की हानि और भूमि उत्पादकता

मृदा अपरदन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव है मृदा का पानी के साथ बह जाना। भारतीय उपमहाद्वीप अनुमानतः 6000 मेगाटन मृदा एक साल में नष्ट होती है। अपरदन के कारण समुद्र में 5 मिलीमीटर मृदा समाहित होती है। अपरदित मृदा अपने साथ अनेक महत्वपूर्ण पोषक तत्व भी ले जाती है। जो हमेशा के लिये समाप्त हो जाते हैं। मुख्य पादप पोषकों (NKP) के रूप में हर साल इस प्रकार का नुकसान 5.37 से 8.4 मेगाटन होता है।

अनेक पोषकों का पृष्ठ कटाव तथा निक्षालन के दौरान नष्ट हो जाते हैं। वे भाग जहाँ जल अन्तःस्रवण उच्च होता है, निक्षालन की मात्रा भी उच्च होती है। मृदा गुणधर्मों का पोषक निक्षालन अभाव पर भी एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। दुमट मिट्टी की अपेक्षा बलुई जमीन में पोषकों का अभाव अत्यधिक होता है ऐसा रेतीली जमीन में अन्तःस्रवण की दर के उच्च होने तथा पोषकों के अवशोषण की क्षमता के कम होने के कारण होता है। इस प्रकार, रेतीली भूमि में ऊपरी सतह में पोषकों का अभाव वायु अपरदन तथा तीव्र निक्षालन के कारण भी होता है।

बहुपक्षीय जंगल के अतिरिक्त, किसी भी प्राथमिक उत्पादन तंत्र के अन्तर्गत गहन भूप्रबन्ध से भूखण्ड की उपादियता समाप्त हो जाती है। कार्बनिक स्रोतों द्वारा ऊर्जा के नुकसान की वापसी के लिए निश्चित सावधानी की आवश्यकता पड़ती है। विभिन्न तरीकों से होने वाले मृदा अपरदन तथा परिच्छेदिका के भौतिक क्षमता तथा ठोस, जल, वायु अनुपात एवं रासायनिक तथा जैविक संतुलन के पदों में वायुमंडल को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में, ये पौधों के लिए पोषकों तथा जल की उपलब्धता को कम करते हैं तथा अन्त में भूमि की उत्पादकता समाप्त हो जाती है।

किसी क्षेत्र के सक्रिय जनसंख्या सहायक क्षमता का अध्ययन यह इंगित करता है कि सतत मृदा अपरदन से क्षेत्र का लगभग 33% हिस्सा उत्पादकता की दृष्टि से महत्वहीन हो जाता है : जबकि ऐसे अपरदित क्षेत्र में उत्पादन लगभग 36% से नीचे गिरता है। इसलिए भारत सहित 16 देशों में सिंचित जमीन की कुल उत्पादकता के बढ़ने के बावजूद भी जैसा कि अध्ययन से पाया जाता है कि हमारे देश की कुल उत्पादकता लगभग 12% कम होने वाली है।

जब अनुमेय मृदा ह्रास के आधिक्य में 12 (टन/हैक्टेयर/वर्ष) मृदा संरक्षण को लागू किया जाता है तो भूमि की उत्पादकता गिर जाती है तथा फिर अंत में शून्य हो जाती है। भूमि को आठ उत्पादकता वर्ग में बाँटा जा सकता है। वह वर्गीकरण उसकी जुताई तथा संरक्षण की आवश्यकता के अनुसार किया गया है।

1. खेती के लिए उपयुक्त
2. अच्छे मृदा प्रबन्ध पद्धति की आवश्यकता
3. मध्यम संरक्षण पद्धति की आवश्यकता

4. गहन संरक्षण पद्धति की आवश्यकता
5. खेती के लिए अनुपयुक्त
6. प्रयोग के लिए किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है
7. प्रयोग में सामान्य प्रतिबंध तथा
8. प्रयोग में गंभीर प्रतिबंध

प्रथम वर्ग की मृदा चिपटी अथवा लगभग चिपटी होती है। वह कृषि के लिए उपयुक्त होती है परन्तु इनमें भी कुछ संरक्षण पद्धति की आवश्यकता होती है। II, III, तथा IV, इस प्रकार के भूमि के लिए कृत्रिम उर्वरक की आवश्यकता होती है, किन्तु संरक्षण प्रबन्ध के विशेष उपायों को भी साथ में लेना चाहिए। वर्ग V, VI, VII, की भूमि चरागाह अथवा जंगली भूमि होती है जिनमें प्रयोग की भिन्न-भिन्न सीमाएं होती हैं। आठवें वर्ग की भूमि जंगली जीवन तथा मनोरंजन के लिए उपयुक्त होती है। सारणी 12.2 मृदा अपरदन तथा दीर्घकाल में भूमि उत्पादकता में होने वाली गिरावट के मध्य संबंध प्रस्तुत करती है।

सारणी 12.2

मृदा अपरदन की दर तथा भू उत्पादकता में दीर्घकालीन गिरावट के मध्य संबंध

मृदा ह्रास की दर (टन प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष)	पूर्वानुमानित दीर्घकालीन उत्पादकता ह्रास
12 से कम	भू-उत्पादकता में कोई परिवर्तन नहीं
12-15	अत्यधिक उत्पादक भूमि का पचास प्रतिशत उत्पादक भूमि में परिवर्तित हो जाती है तथा शेष अपरिवर्तित रहती है।
50-100	सभी उत्पादक भूमि का 100% एक उत्पादक वर्ग से नीचे आ जाती है।
100-200	सभी उत्पादक भूमि का 50% अनुपयुक्त भूमि (अनुत्पादक भूमि) में परिवर्तित हो जाती है, शेष एक उत्पादक वर्ग के नीचे आ जाती है।
201 से अधिक	उत्पादक भूमि की सब सीमाएं अनुपयुक्त भूमि (अनुपजाऊ भूमि) में परिवर्तित हो जाती है।

12.4.4 मृदा अपरदन की कीमत

मृदा अपरदन विश्व में आर्थिक दृष्टि से सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। इससे केवल अपरदित भूमि की उत्पादकता ही नष्ट नहीं होती बल्कि अपरदित मृदा उत्पादक भूमि तक पहुँच जाती है जो अपनी उत्पादकता खो देते हैं। मरुस्थल का प्रसार एक अच्छा उदाहरण है। फसली भूमि की वह उत्पादकता जो वार्षिक तौर पर नष्ट हो जाती है, सारणी 12.3 में दी गई है।

सारणी 12.3

भूमि उत्पादकता का वार्षिक नुकसान (भारत में)

	स्रोत		नुकसान हैक्टेयर/वर्ष
1)	**भूमि उत्पादका का वार्षिक नुकसान**		
	अ) उत्पादक भूमि में अवनलिकाओं तथा खड्डों द्वारा अतिक्रमण		8,000
	ब) कृष्य भूमि जो उत्पादन के लिए अनुपयुक्त हो जाते हैं		22,50,000
	स) बस्तियों की ओर झुकाव, कस्बा, शहर इत्यादि		15,00,000
	द) (1953-1988) के लिए बाढ़ से औसत विनाश		38,20,000
	खनन क्रियाकलापों से नुकसान जैसा कि 1989 में हुआ था		500
		योग	75,78,500
	वर्ष 2000 ए.डी. तक 1440 हैक्टेयर/वर्ष बढ़ सकता है		
2)	**वनभूमि का निम्नलिखित द्वारा नुकसान**		
	अ) सही उद्देश्यों के लिए वनोन्मूलन		1,47,000
	ब) स्थानांतरित जुताई के अंतर्गत आस्फालन तथा आग लगना		1,00,000
	स) आज तक बांध तथा भंडार में जल प्लावन		12,500
		योग	2,59,500
		कुल योग	78,38,000

इस प्रकार कुल 7.84 मेगा हैक्टेयर भूमि को आकलित किया गया है जो उत्पादकता की दृष्टि से बुरी तरह प्रभावित है। कुछ में, नुकसान अनुत्क्रमणीय है जबकि दूसरों में यह धीमे-धीमे होती है तथा नुकसान को पुनः संचयित किया जा सकता है। फिर भी, हम उसकी विवेचना कुछ उदाहरणों के साथ करेंगे।

खड्डों तथा अवनालिकाओं के बढ़ने के कारण उपजाऊ भूमि का अभाव अधिकाशतः आदेशी भूमि में होता है। इनका कम से कम 50% उच्च उत्पादक फसली भूमि है, प्रत्येक हैक्टेयर की कीमत 1000-2000 रुपये के मध्य आती है। यदि वार्षिक रूप से अभावग्रस्त 8000 हैक्टेयर भूमि के आधे की औसत कीमत 15000 रुपए है तो कुल नुकसान $4000 \times 15000 = 60 \times 10^6$ अथवा 60 मिलियन रुपए/वर्ष होगी। कोयला खान के कारण यह मान 500×10^4 अथवा 5 मिलियन रुपए प्रतिवर्ष आता है।

सबसे ज्यादा क्षति बाढ़ के द्वारा हुई है जो औसतन वर्ष 1953 तथा 1988 के बीच के समय के लिए सभी नुकसानों जैसे खेतिहर, भूमि; वन-जीवन, जानवर तथा उत्पादकता को मिलाकर 886 करोड़ रुपये है। 1000 रुपये/हैक्टेयर की दर से 3.82 हैक्टेयर/प्रतिवर्ष की औसत खेतिहर भूमि की आर्थिक क्षति 3820 रुपये या 382 करोड़ रुपये हैं।

मृदा अपरदन का एक सबसे अधिक विनाशकारी परिणाम विभिन्न जलाशयों का अवसादन है। 5344 मेगाटन अपरदित पदार्थ का 480 मेगाटन भारत के विभिन्न जल भंडारों में निक्षेपित होकर समाप्त हो जाते है जिससे जल भंडारों की सिंचाई तथा जलशक्ति क्षमता कम हो जाती है। भंडार अवसादन के पदों में अपरदन की वार्षिक कीमत को कम से कम 10000×100 मिलियन अथवा 1000000 रुपए (1 मिलियन प्रतिवर्ष) आंकी गई है। अपरदित भूमि से अधिकांश पादप पोषक जैसे — नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पौटेशियम (NPK) बाहर निकल जाते है जिसको 5.37 से 8.4 मेगाटन के मध्य आकलित किया गया है। यद्यपि आकलन अधिक बदलते रहते हैं, फिर भी सम्पूर्ण नुकसान उर्वरक के उस भाग के बराबर है जिसका प्रयोग देशभर में किया जाता है। प्रतिवर्ष लगभग 0.03 किलोग्राम/हैक्टेयर और पोषक अपरदन से और कई चीजों का नुकसान होता है, उनके आर्थिक मान को निर्धारित करना कठिन है। ये निम्न प्रकार हैं,

1) चरागाह तथा चारा उत्पादन में कमी, लकड़ी के उत्पादन में बढोत्तरी
2) वनस्पति तथा जन्तुओं के प्राकृतिक जातियों का अभाव होना तथा उसके परिणामस्वरूप जैव विभिन्नता में घटोत्तरी
3) जल संसाधन में कमी के कारण झरने एवं नाले सूखने लगते हैं तथा कुंओं में जलस्तर नीचे गिरने लगता है।
4) भौतिक रासायनिक तथा जैविक विखंडन के अलावा वायु अपरदन अथवा जल अपरदन के कारण भूमि का ह्रास होने लगता है, तब वहां रोजगार के अवसर भी कम होने लगते हैं। इसके कारण मानव शहरों तथा कस्बों में चले जाते हैं तथा अनियोजित शहरीकरण से संबंधित समस्याएं पैदा होती हैं।

इस प्रकार मृदा अपरदन की कीमतों में मानव महत्व के विभिन्न घटक शामिल हैं।

बोध प्रश्न 3

रिक्त स्थानों को उचित शब्दों द्वारा भरिए :

अ) यह आकलित किया गया है कि कुल 7.84 मेगाहैक्टेयर भूमि की उत्पादकता विभिन्न मानव क्रियाओं से बुरी तरह प्रभावित होती है। सबसे गंभीर नुकसान ..... के द्वारा होता है जिससे 3 82 मेगाहैक्टेयर अच्छी भूमि अनुपजाऊ हो जाती हैं।

ब) ..... का अवसादन मृदा अपरदन का एक सबसे विनाशकारी परिणाम है। इसकी कीमत लगभग 1 मिलियन प्रतिवर्ष है।

स) यदि अपरदन में मृदा अभाव की दर 100-200 टन प्रतिहैक्टेयर प्रतिवर्ष हो तो ऐसा अनुमान किया जाता है कि कुल क्षेत्रफल का ..... प्रतिशत अनुपजाऊ हो जाएगा।

द) दुमट मिट्टी की अपेक्षा रेतीली भूमि में पोषकों का नुकसान अधिक होता है क्योंकि ..... की दर उच्च होती है जबकि पोषक की ..... क्षमता रेतीली भूमि में कम होती है।

य) भूमि को आठ उत्पादक वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है। ऐसा वर्गीकरण कृषि की क्षमता तथा संरक्षण की आवश्यकता के आधार पर किया जाता है। वे आठ उत्पादकता वर्ग कौन से हैं। नीचे दिए गए स्थान में इंगित कीजिए —

.....

.....

12.5 प्रत्युपचार

पूर्व के खण्डों में आप भूनिम्नीकरण के कारणों तथा प्रभावों के बारे में अध्ययन कर रहे थे। अब आप उपचार के उन उपायों के बारे में अध्ययन करेंगे जो यदि प्रयोग में लाए जाएं तो भूमि को निम्नीकरण से बचाव करेंगे।

मृदा अपरदन को कम करने वाले उपाय कम से कम दस शताब्दियों पहले से ही ज्ञात है। खेतिहर भूमि में एक सबसे अधिक प्राचीन उपाय सोपान बनाना है, जो प्राचीन मानव के प्रभावकारी उपाय को प्रदर्शित करता है। उस प्राचीन तकनीक को महत्वपूर्ण ढंग से परिष्कृत किया गया है तथा इनमें विभिन्न रूपान्तरण किए गए हैं। आजकल मृदा नमी संरक्षण के लिए एक समकालिक प्रयास अभ्यास में लाया जाता है।

सर्वप्रथम, किसी भूमि के भूखण्ड की क्षमता को निर्धारित किया जाता है अर्थात् भूमि का वह प्रकार जिसका प्रयोग किया जाता है, आर्थिक उत्पादन जिसके लिए भूखण्ड ढाल, मृदा प्रकार, जल बहाव, वायु प्रवाह और दूसरे पारिस्थितिक लक्षणों के अनुसार उपयुक्त हो, इत्यादि को निर्धारित करते हैं। एक बार भूखण्ड की क्षमता निर्धारित हो जाए तब मृदा अपरदन इसको आठ वर्गों में वर्गीकृत किया गया है जिसके बारे में आप खण्ड 12.4.3 में पढ़ चुके हैं।

वर्ग I की भूमि के लिए उपचार अभ्यास की आवश्यकता नहीं पड़ती है। जुताई के दौरान प्राकृतिक पोषक खनिज में घटोत्तरी के प्रारम्भ होने के पश्चात् कार्बनिक एवं अकार्बनिक उर्वरकों को मिलाना आवश्यक हो जाता है। मृदा अपरदन नियंत्रण के लिए बचावकारी उपचार उपाय की आवश्यकता वर्ग II, III तथा IV में होती है। ये भूमि संयुक्त रूप से विखंडित जुताई योग्य कहलाती है। उपचार के उपाय दो प्रकार के होते हैं :

1) बचावकारी उपचार के उपाय
2) विखंडित भूमि का पुनर्वास।

आइए अब हम उनके बारे में अध्ययन करें।

चित्र 12.3 : कन्टूर कृषि

12.5.1 बचावकारी प्रत्युपचार

वायु अपरदन को रोकने के लिए पेड़ उगाए जाते हैं जो वायु के बल को तोड़ने का कार्य करते हैं। पेड़ केवल भूमि को सूर्य से ढकने का ही केवल कार्य नहीं करते वे मृदा कणों को बांधने में भी मदद करते हैं। वायु की दिशा के अनुसार उपयुक्त कोण से जुताई करने से वायु अपरदन से बचाव में सहायता मिलती है।

ढलुआ जमीन पर जल अपरदन, खड़े **ढाल पर सीढ़ियाँ बनाकर** अथवा साधारण जमीन पर **कन्टूर कृषि** के द्वारा रोका जा सकता है। कन्टूर कृषि में ढाल की जुताई उन क्षैतिजवत् रेखाओं से अनुदिश किया जाता है जिनकी उन्नयन समान हो (चित्र 12.3)। जल अपरदन को रोकने की दूसरी तकनीक पट्टीदार खेती है जिसमें घनी उगने वाली फसल को उस फसल के साथ एकान्तरित करते हैं जिसमें खाली जमीन बचती हो। खाली क्षेत्रों से बह कर आयी हुई मृदा घनी उगने वाली फसल से बंध जाती है। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में पेड़ों का छाँव अथवा जमीन के ऊपर का वितान वर्षा की बूंदों के बलों को तोड़ने का साधन प्रदान करती है तथा उस प्रकार उनके अपरदक शक्ति को कम करते हैं। पेड़ों के वितान के कारण सीधे पड़ने वाले सूर्य प्रकाश को भी कम करते हैं। सूर्य प्रकाश कुछ निश्चित फसलों को नुकसान पहुँचाने के साथ भूमि में कार्बनिक पदार्थों के विखंडन को उस दर से त्वरित करता है जो एच्छिक दर से कहीं ज्यादा होती हैं।

12.5.2 निम्नीकृत भूमि का पुनर्वास

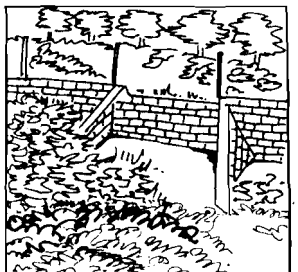

चित्र 12.4 : अपरदन से भूमि की सुरक्षा हेतु कंक्रीट बांध

पूर्व के खण्डों में वर्णित उपायों को बचाव के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। पूनर्वास के उपाय वहाँ उपयोग में लाये जा सकते हैं जहाँ अपरदित भूमि के पुनःसंरक्षण की सम्भावना बनती है। वर्ग V, VI, VII तथा VIII जिनके मुख्य लक्षण यह है कि उस भूमि का प्रयोग जोतने बोने के लिए नहीं बल्कि और उद्देश्यों के लिए किया जाता है और वहाँ मृदा अपरदन नियंत्रण की पुनर्वासी विधियां आवश्यक हैं। वे विधियां विखंडित भूमि की दशाओं के प्रयास से संबंधित हैं। मुख्य सिद्धान्त में एक है — कि भूमि पर सतत आवरण बनाये हुए लकड़ी तथा दूसरे — उत्पादों का अत्यधिक उत्पादन। यांत्रिक हथियारों के प्रयोग द्वारा छोटे-छोटे रोकने वाले बांध अथवा पूर्वबनी अवनालिकाओं के इर्द-गिर्द बंध निर्माण की सहायता भूमि का तलसंतुलन रखना एक ऐसा ही उदाहरण है (चित्र 12.4)।

दूसरे पुनर्वासीय अपरदन नियंत्रण उपाय का उद्देश्य सरिता तीर अपरदन को कम करना है। यह रिवेटमेन्ट के द्वारा किया जाता है जिसमें दिवाल तथा जेटी बनाये रखते हैं जो किनारों के कटाव को कम करते हैं तथा रेत एवं गाद को कोनों के इर्द-गिर्द बांधते हैं। मृदा को बांधने वाले वाइटेक्स *(Vitex)*, लेन्टाना *(Lantana)*, आइपोमिया *(Ipomea)* तथा दूसरी वनस्पतियाँ इन रिवेटमेंट में स्थापित हो जाती हैं। अवसाद रोधक भंडार (Sediment detection reservior) धारा की अपरदनकारी क्षमता को भी कम करते हैं। जल ग्रहण बेसिन (Catchment basin) अथवा बाढ़ नियंत्रक भंडार उच्च प्रवाह को कम करने में मदद करते हैं। ये उपाय मंहगे हैं तथा भू-क्षमता को धीरे-धीरे पुनः प्राप्त कर सकते हैं।

अपरदित परास भूमि ताथ घास स्थल के लिए चारे के योग्य पौधों को समायोजित किया जाना चाहिए। जानवरों द्वारा चरने की प्रक्रिया को उसी सीमा तक बढ़ाया जाना चाहिए जहाँ तक कि चारे वाले पौधे किसी भी समय पड़ सकते सूखे की अवधि में पर्याप्त रूप से सक्रिय रह सकें।

बोध प्रश्न 4

रिक्त स्थानों को उपयुक्त शब्दों से भरिए :

अ) वायु अपरदन को रोकने के लिए ..... वायु के बल को तोड़ने के लिए लगाए जाते हैं।

ब) ..... केवल सूर्य से पृथ्वी को ढकने का ही कार्य नहीं करते बल्कि वे मृदा कणों को बांधने का भी कार्य करते हैं।

स) ढलुए जमीन पर जल अपरदन को खड़े ढाल पर ..... के द्वारा अथवा ..... जुताई के द्वारा रोका जा सकता है। ..... जुताई में किसी ढाल की जुताई उन क्षैतिज रेखाओं के अनुदिश की जाती है जिनका उन्नयन समान होता है।

द) खाली क्षेत्रों से धावन द्वारा मृदा ..... उगने वाली फसल द्वारा बंधी रहती है।

य) कुछ फसलों को नुकसान पहुँचाने के अलावा, सूर्य प्रकाश भूमि के कार्बनिक पदार्थ ..... को उस दर से त्वरित करते हैं जो एच्छिक दर से ज्यादा होते हैं।

12.6 सारांश

इस एकक में आप अध्ययन कर चुके है कि :

- प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा मानव क्रियाकलापों द्वारा भूनिम्नीकरण होता है। मृदा अपरदन एक भूनिम्नीकरण की घटना है जो जल तथा वायु द्वारा होती है।
- मानव की मुख्य क्रियाओं, जो मृदा अपरदन की दर को त्वरित करती हैं, में वनोन्मूलन, गहन कृषि, खनन तथा दूसरी विनाशकारी क्रियाएं शामिल हैं। दून घाटी में खान से नदियों में गाद, भूखण्ड में अस्थायित्व होता है जिसके परिणामस्वरूप सिंचाई के जल की आपूर्ति में कमी होती है तथा चरागाह का नुकसान होता है।
- भूनिम्नीकरण के परिणामस्वरूप पृष्ठ कटाव तथा बाढ़, मरुस्थलीकरण तथा पोषकों तथा भू-उत्पादकता में कमी होती है।
- मृदा अपरदन आर्थिक रूप से सबसे अधिक विनाशकारी घटना है। अपरदित भूमि की केवल उत्पादकता ही नष्ट नहीं होती बल्कि अपरदित भूमि उपजाऊ भूमि को भी नष्ट कर देती है।
- मृदा के विखंडन को बचावकारी उपायों द्वारा रोका जा सकता है। निम्नीकृत भूमि को भी उपयुक्त पूनर्वासी तकनीकों द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

12.7 अंत में कुछ प्रश्न

1) संक्षेप में निम्न पर टिप्पणी कीजिए :

अ) परत अपरदन .....

.....

ब) रिल अपरदन .....

....

स) अवनालिका अपरदन .....

.....

द) तटीय अपरदन .....

.....

2) वनोन्मूलन के प्रभावों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

3) भूनिम्नीकरण के क्या प्रभाव हैं? नीचे दिए गए स्थान में उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

4) मृदा संरक्षण के लिए दो बचावकारी उपचार उपायों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए .....

.....

.....

12.8 उत्तर

1) अ) मृदा अपरदन
   ब) परत, अवनालिका, तटीय
   स) तरंग
   द) वायु

2) अ) सत्य ब) सत्य स) सत्य द) सत्य

3) i) अ) बाढ़
   ब) भंडार
   स) 50
   द) अन्तःस्रवण, अवशोषण

   ii) वर्ग I कृषि के लिए उपयुक्त
   वर्ग II अच्छे मृदा प्रबन्ध उपायों की आवश्यकता होती है
   वर्ग III मंद संरक्षण अभ्यास आवश्यक है
   वर्ग IV गहन संरक्षण अभ्यास आवश्यक है
   वर्ग V कृषि के लिए अनपयुक्त
   वर्ग VI प्रयोग के लिए प्रतिबन्ध नहीं
   वर्ग VII प्रयोग के लिए मंद सीमाएं
   वर्ग VIII प्रयोग के लिए गंभीर सीमाएं

4) अ) पेड़
   ब) पेड़
   स) सीढ़िया बनना
   द) घना उगाना
   य) निम्नीकरण

अन्तस्थ प्रश्न

1) अ) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   ब) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   स) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें
   द) कृपया खण्ड 12.2.1 देखें

2) खण्ड 12.3.2 देखें

3) कृपया खण्ड 12.4 देखें

4) कृपया खण्ड 12.5.2 देखें